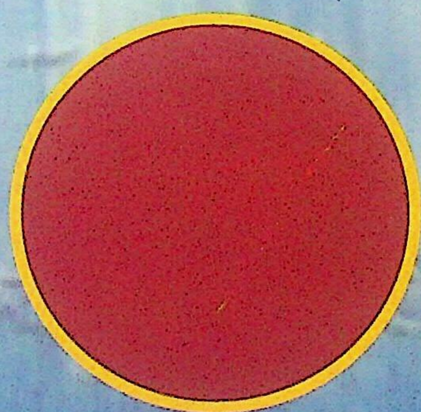
रस-छंद-अलंकार

(दोष-विवेचन सहित)



राजेंद्र कुमार पांडेय

रस-छंद-अलंकार

(दोष-विवेचन सहित)

राजेंद्र कुमार पांडेय



वाणी प्रकाशन



वाणी प्रकाशन

4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110 002

शाखा

अशोक राजपथ, पटना 800 004

फ़ोन: +91 11 23273167 फ़ैक्स: +91 11 23275710

www.vaniprakashan.in
vaniprakashan@gmail.com

RAS-CHHAND-ALANKAR
by Rajendra Kumar Panday

ISBN : 978-93-5000-896-6
Grammar

प्रथम संस्करण

मूल्य : ₹ 60

आर. टेक ऑफ़सेट, दिल्ली-110095 में मुद्रित

वाणी प्रकाशन का लोगो मक़बूल फ़िदा हुसेन की कूची से

अनुक्रम

भूमिका

रस-छंद-अलंकार तथा गुण-विवेचन रचना के आकलन के प्राचीन उपागम रहे हैं। इस उपागम का विवेचन हमें संस्कृत के काव्य शास्त्रीय ग्रंथों में विस्तार से मिलता है। रीतिवादी कविता के मूल्यांकन की कसौटी परंपरा से यही रहे हैं। कविता ही नहीं गद्य का मूल्यांकन भी इन्हीं निकषों के माध्यम से किया जाता रहा है। साहित्यिक मूल्यांकन के ये सार्वभौम तत्व हैं क्योंकि विश्व साहित्य में ये किसी न किसी रूप में जरूर मिलते हैं। आधुनिक काव्य एवं गद्य रचना में इनकी भूमिका धीरे-धीरे नगण्य होती जा रही है। इस गिरावट के लिए ये निकष जिम्मेदार नहीं, अपितु रचना एवं रचनाकार जिम्मेदार हैं। रचना की भाषा के मूल्यांकन के लिए अब पाठ-विश्लेषण, प्रोक्ति-विश्लेषण, विसंरचक आदि नए निकष शामिल हो गए हैं। रस-छंद-अलंकार तथा गुण-विवेचन पूरे मध्यकाल तथा आधुनिक काल के छायावाद युग तक प्रभावी रचना मूल्यांकन के निष्कर्ष रहे हैं। इनकी उपयोगिता कम नहीं है। स्कूल तथा कॉलेज के हिंदी विद्‌यार्थियों के लिए तैयार किए गए ये 'विवेचन' काफी कारगर सिद्‌ध होंगे। ऐसी हमारी आशा है। सुधार एवं सुझाव के लिए विद्‌वज्जनों की टिप्पणी का हम स्वागत करेंगे।

राजेंद्र कुमार पांडेय
प्रवक्ता–केंद्रीय हिंदी संस्थान
दिल्ली केंद्र

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

अध्याय–1
रसानुभूति और विवेचन

साहित्य के अध्ययन से पाठक को जो अनुभूति होती है वह एक सात्विक आनंद है और उसे ही रसानुभूति कहते हैं। साहित्य और कला से जो हमें आनंद मिलता है, वैसा आनंद संसार की किसी भी भौतिक वस्तु से नहीं मिल सकता। साहित्य में काव्य पाठ एवं श्रवण तथा नाटक के देखने से जिस आनंद की प्राप्ति होती है, उसे ही रस कहते हैं। यह आनंदानुभूति व्यक्तिगत राग-द्वेष से मुक्त होती है। सांसारिक प्रेम, दुख या क्रोध में व्यक्तिगत संबंध होता है। पर कविता पाठ अथवा श्रवण तथा नाट्याभिनय को देखकर जो हमारे अंदर प्रेम, दुख या क्रोध उत्पन्न होता है वह निजी स्वार्थ, राग या द्वेष से मुक्त होता है। साहित्य और कला का अनुभव हमें व्यक्तिगत संकीर्णताओं से मुक्त कर देता है। तथा आनंद जो हमें प्राप्त होता है वह सर्वजन हिताय होता है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने इस अनुभव की तुलना योगियों की समाधि या ब्रह्मानंद से की है।

रस के अंग

रस के चार अंग या अवयव हैं–स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव।

1. स्थायी भाव–संसार में जो भी मनुष्य जन्म लेता है, उसमें कुछ भाव या संस्कार जन्मजात रूप से रहते हैं। जैसे कि प्रत्येक व्यक्ति के

चित्त में प्रेम, दुख या करुणा, क्रोध, आश्चर्य, उत्साह के भाव सदैव रहते हैं। ये ऐसे भाव हैं, जो संस्कार के रूप में जन्म लेने के साथ ही हमारे चित्त में रहते हैं। जब इनके कारण सामने आते हैं और उन कारणों को हम समझने लगते हैं तो संस्कार के रूप में चित्त में दबे हुए ये भाव प्रकट हो जाते हैं। इसी तरह साहित्य या कला में भी ये भाव प्रकट होते हैं। इन्हीं को स्थायी भाव कहा गया है।

स्थायी भाव दस की संख्या में हैं। ये हैं—रति (स्त्री और पुरुष का प्रेमद), हास, शोक (दुख), क्रोध, उत्साह, भय, जुगुत्सा (घृणा), विस्मय (आश्चर्य), निर्वेद (वैराग्य या शांति) तथा वात्सल्य (अपने से छोटों के लिए प्रेम)।

2. विभाव—स्थायी भाव के कारण को विभाव कहा गया है। ये विभाव दो प्रकार के होते हैं—आलंबन और उद्दीपन।

आलंबन विभाव—जिन व्यक्तियों या पात्रों के आलंबन (सहारे) से स्थायी भाव जाग्रत होता है, वे आलंबन विभाव कहे जाते हैं। आलंबन के भी दो प्रकार हैं—आश्रय और विषय। जिस पात्र या व्यक्ति के चित्त में स्थायी भाव उत्पन्न होते हैं, वे आश्रय कहलाते हैं। जिसको लेकर या जिसके प्रति आश्रय के चित्त में ये भाव उत्पन्न होते हैं, वह विषय है।

उद्दीपन विभाव—आश्रय के मन में जाग्रत स्थायी भाव को जो तत्व संवर्धित या वृद्धि करते हैं, वे उद्दीपन कहलाते हैं। उद्दीपन विभाव भी दो प्रकार के होते हैं—विषय की बाह्य चेष्टाएँ और बाह्य वातावरण। उदाहरण के लिए शृंगार रस के प्रसंग में यदि नायक (आश्रय) के मन में नायिका (विषय) के प्रति रति भाव जाग्रत होता है तो नायिका (विषय) की शारीरिक चेष्टाएँ जो कि (आश्रय) के मन में जाग्रत रति भाव को और अधिक तीव्र करती हैं तथा आसपास का सुंदर वातावरण चाँदनी रात आदि भी आश्रय के रति भाव को और अधिक तीव्र करने में सहायक होते हैं। अतः विषय की चेष्टाएँ और बाह्य अनुकूल वातावरण दोनों उद्दीपन विभाव हुए।

3. अनुभाव–'अनु' उपसर्ग का अर्थ है–बाद में या पीछे। स्थायी भाव के उत्पन्न होने पर उसके बाद जो भाव उत्पन्न होते हैं उन्हें अनुभाव कहा जाता है। ये अनुभाव उस व्यक्ति में उत्पन्न होते हैं जो स्थायी भाव का आश्रय है। दूसरे शब्दों में आश्रय की बाह्य चेष्टाओं को अनुभाव कहा जाता है। अनुभाव भी दो प्रकार के होते हैं–कायिक तथा सात्विक। शरीर में होने वाले अनुभाव कायिक हैं। जैसे किसी को पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाना, चितवन से अपने प्रेमी को ताकना आदि। जो अनुभाव मन में आए भाव के कारण स्वतः प्रकट हो जाते हैं, वे सात्विक हैं। जैसे–पसीना आना, रोंएँ खड़े हो जाना, कँपकँपी छूट जाना, मुँह फीका पड़ना आदि।

4. संचारी भाव–स्थायी भाव के साथ आते-जाते रहने वाले अन्य भावों को संचारी भाव कहा जाता है। संचारी भावों की संख्या तैंतीस (33) बताई गई है। इसमें से मुख्य संचारी भाव ये हैं–शंका, निद्रा, मद, आलस्य, दीनता, चिंता, मोह, स्मृति, धैर्य, लज्जा, चपलता, आवेग, हर्ष, गर्व, विषाद, उत्सुकता, उग्रता, मति, त्रास और वितर्क।

रस स्थायी भाव तथा संचारी भावों के परस्पर संबंध को इस प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है–

रस	**स्थायी भाव**	**संचारी भाव**
श्रृंगार	रति	स्मृति, चिंता, हर्ष, मोह आदि।
हास्य	हास	हर्ष, निद्रा, आलस्य, चपलता आदि।
करुण	शोक	ग्लानि, शंका, चिंता, दीनता, मोह आदि।
रौद्र	क्रोध	उग्रता, शंका, स्मृति आदि।
वीर	उत्साह	आवेग, हर्ष, गर्व आदि।
भयानक	भय	त्रास, ग्लानि, शंका, चिंता आदि।
वीभत्स	जुगुत्सा	दीनता, निर्वेद, ग्लानि आदि।
अद्भुत	विस्मय	हर्ष, स्मृति, आवेग, शंका आदि।
शांत	निर्वेद (वैराग्य)	हर्ष, धृति, स्मृति आदि।
वत्सल	वात्सल्य	चिंता, शंका, हर्ष, धृति, स्मृति आदि।

रस के भेद

श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत, शांत और वत्सल–रस के ये दस भेद हैं।

1. श्रृंगार रस–स्त्री और पुरुष के बीच होने वाले प्रेम का वर्णन साहित्य में श्रृंगार रस कहलाता है। श्रृंगार रस दो प्रकार का होता है--संयोग और वियोग। इसके विभावों में आलंबन के अंतर्गत विषय और आश्रय वे नायक और नायिका माने जाते हैं जिनमें परस्पर प्रेम हो। वसंत ऋतु, चाँदनी रात आदि इसके उद्‌दीपन विभाव होते हैं। उत्सुकता, दीनता, चिंता आदि संचारी भाव इसके साथ रहते हैं।

उदाहरण (1): मेरा बस चलता तो मैं बन जाता कौमार्य तुम्हारा
ओठों पर निर्माल्य अछूता बनकर मैं छा जाता
अंगों के चंपई रेशमी परदों में सो जाता।

–नरेन्द्र शर्मा

पहले उदाहरण में संयोग श्रृंगार है। इसमें प्रेमी आश्रय है, प्रेमिका विषय (आलंबन)। प्रेमिका की सुंदरता उद्‌दीपन है। प्रेमिका के ओठों पर निर्माल्य बन कर छाने, उसके अंगों के परदों में सोने आदि की इच्छा अनुभाव है। हर्ष, आवेग, मोह आदि संचारी भाव हैं। इनसे यहाँ रति स्थायी भाव प्रकट होता है। इस रति की अभिव्यक्ति से पाठक को संयोग श्रृंगार का अनुभव होता है।

उदाहरण (2): निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस रितु हम पै जब तें स्याम सिधारे।
दृग अंजन लागत नहिं कबहूं उर कपोल भये कारे।
कंचुक नहिं सूखत सुन सजनी उर बिच बहत पनारे।

यहाँ कृष्ण आलंबन हैं। गोपियाँ आश्रय हैं। वर्षा उद्‌दीपन विभाव है। गोपियों का रुदन, उच्छ्‌वास आदि अनुभाव हैं। आवेग, चिंता, विषाद आदि संचारी भाव हैं। इन सबके संयोग से विप्रलंभ श्रृंगार की निष्पत्ति हुई है।

2. करुण-रस–अत्यंत दुखद घटना या प्रसंग के निरूपण से करुण रस की निष्पत्ति होती है। करुण रस का स्थायी भाव शोक है। प्रिय व्यक्ति या प्रिय वस्तु से सदा के लिए वियोग होने पर करुण रस होता है। जिसमें वियोग हो, वह इसमें आलंबन और उससे संबंधित वस्तुओं का दर्शन उद्दीपन होता है। मूर्छित होकर गिर पड़ना, रोना, आहें भरना आदि अनुभाव होते हैं और ग्लानि, चिंता आदि संचारी भाव।

उदाहरणः अभी तो मुकुट बँधा था माथ
हुए कल ही हल्दी के हाथ
खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी न चुंबन शून्य कपोल
हाय चूक गया संसार
बना सिंदूर अंगार।

कवि सुमित्रानंदन पंत की इन पंक्तियों में सुखमय संसार के अचानक नष्ट हो जाने से जन्मी निराशा व्यक्त हुई है। किसी नववधू का प्रियतम विवाह के बाद पहले ही दिन दिवंगत हो गया है। यह नववधू यहाँ आश्रय है। दिवंगत पति विषय है। नायिका का दुख में मौन रह जाना अनुभाव है। विषाद, चिंता, लज्जा, आदि संचारी भाव हैं। इनके संयोग से यहाँ करुण रस व्यक्त हुआ है।

3. हास्य रस–अनुचित आचरण, विकृत चेष्टाओं के चित्रण से हास्य रस उत्पन्न होता है। हास्य रस का स्थायी भाव हास (हँसी) है। हँसी या उपहास का पात्र इसके आलंबन विभाव तथा हँसा देने वाली चेष्टाएँ उसमें उद्दीपन विभाव बनती हैं।

उदाहरणः इस दौड़-धूप में क्या रखा, आराम करो, आराम करो।
आराम जिंदगी की कुंजी, इससे न तपेदिक होती है।
आराम सुधा की एक बूँद, तन का दुबलापन खोती है।
आराम शब्द में राम छिपा, जो भव बंधन को खोता है।
आराम शब्द का ज्ञाता तो बिरला ही योगी होता है।

इसलिए तुम्हें समझाता हूँ, मेरे अनुभव से काम करो।

—गोपालदास व्यास

यह कविता एक आलसी व्यक्ति की उक्ति है। आलसी व्यक्ति यहाँ आलंबन है। उसके हास्यपूर्ण कथन उद्‌दीपन हैं। हर्ष, चपलता, आलस्य आदि संचारी भाव हैं। इनसे यहाँ हास्य रस की सृष्टि होती है।

4. रौद्र रस—रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। अपना शत्रु, दुष्ट व्यक्ति, समाजद्रोही, खलनायक आदि इसमें आलंबन विभाव होते हैं तथा उनके कार्य या चेष्टाएँ उद्‌दीपन। आँखें लाल होना, दाँत पीसना, ओठ काटना, अस्त्र-शस्त्र उठाना आदि इसमें अनुभाव होते हैं। उग्रता, मद, गर्व, आदि संचारी भाव।

उदाहरणः श्रीकृष्ण के सुन वचन अर्जुन क्रोध से जलने लगे,
सब शोक अपना भूलकर करतल युगल मलने लगे।
"संसार देखे अब हमारे शत्रु रण में मृत पड़े।"
करते हुए यह घोषणा वे हो गए उठ कर खड़े।

मैथिलीशरण गुप्त के जयद्रथ-वध काव्य में यहाँ अर्जुन के क्रोध का निरूपण होने से रौद्र-रस व्यक्त हुआ है। अर्जुन आश्रय है, जयद्रथ विषय। श्रीकृष्ण के वचन उद्‌दीपन हैं। अर्जुन का हथेली मलना तथा घोषणा करना अनुभाव हैं।

5. वीर रस—युद्‌ध, धर्म, दान या करुणा के प्रसंगों में किसी वीर या महापुरुष नायक की चेष्टाओं के चित्रण से वीर-रस उत्पन्न होता है। इसका स्थायी भाव उत्साह है। शत्रु, याचक, दयनीय व्यक्ति आदि इसके आलंबन विभाव होते हैं। शत्रु की चेष्टाएँ, याचक के वचन आदि उद्‌दीपन। बाँहों का पड़कना, मुँह का लाल होना आदि अनुभाव इसके साथ रहते हैं तथा गर्व, हर्ष, उत्सुकता आदि संचारी भाव।

उदाहरणः भीषम भयानक पुकार्‌यो रनभूमि आनि,
छाई छिति छत्रिनि गीति उठि जाइगी।
कहै रतनाकर रुधिर सौं रूँधेगी धरा,

लोथनि पै लोथनि की भिति उठि जाइगी।
जीति उठि जाइगी अजीत पंडु-पूतनि की,
भूप दुरजोधन की भीति उठि जाइगी।
कैतो प्रीति-रीति सुनीति उठि जाइगी, कै
आज हरि-प्रन की प्रतीति उठि जाइगी।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर' के इस काव्यांश में भीष्म के दृढ़ निश्चय का चित्रण किया गया है। भीष्म आश्रय हैं, श्रीकृष्ण विषय हैं, भीष्म का घोषणा करना अनुभाव है। धृति, मति, गर्व आदि संचारी भाव यहाँ व्यक्त हुए हैं। भीष्म का उत्साह स्थायी भाव है।

6. भयानक रस–डरावने दृश्यों या भयजनक प्रसंगों के चित्रण से भयानक रस की प्रतीति होती है। भयानक रस का स्थायी भाव भय है। डरावने व्यक्ति या जानवर आदि इसमें आलंबन विभाव होते हैं तथा भयानक दृश्य या भयंकर कर्म उद्दीपन। काँपना, पसीना आना आदि अनुभाव तथा दीनता, त्रास, वितर्क, चिंता आदि संचारी भाव इसके साथ रहते हैं।

1. उधर गरजती सिंधु लहरियाँ कुटिल काल के जालों सी
चली आ रहीं फेन उगलती फन फैलाए व्यालों सी
धँसती धरा धधकती ज्वाला ज्वालामुखियों के विश्वास
और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास ॥

–कामायनी

यहाँ प्रलयकालीन विनाश का दृश्य है। मनु आश्रय हैं। उनका जड़-स्तब्ध रह जाना अनुभाव है। चिंता, विषाद, शंका, मोह, त्रास आदि संचारी भाव हैं। इनसे भय स्थायी भाव पुष्ट होकर रस रूप में आस्वाद्य होता है।

2. एक ओर अजगरहिं लखि एक ओर मृगराय।
विकल बटोही बीच ही पर्‌यो मूरछा खाय ॥

यहाँ विकल बटोही (पथिक) आश्रय है। अजगर तथा सिंह विषय

हैं। अजगर और सिंह की चेष्टाएँ उद्दीपन हैं और बटोही का मूर्छित होना अनुभाव है। त्रास, शंका, दीनता, आवेग आदि संचारी भाव हैं।

7. वीभत्स रस–घृणा उत्पन्न करने वाले अमांगलिक, अश्लील या गंदे दृश्यों अथवा वस्तुओं के चित्रण से वीभत्स रस उत्पन्न होता है। वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा (घृणा) है। घृणित वस्तु इसमें आलंबन तथा दुर्गंध आदि उद्दीपन होते हैं। नाक बंद करना, झिझकना, दूर हटना आदि अनुभाव तथा आवेग, ग्लानि आदि संचारी भाव होते हैं।

1. यज्ञ समाप्त हो चुका तो भी धधक रही थी ज्वाला।
दारुण दृश्य, रुधिर के छींटे, आस्थिरखंड की माला ॥
वेदी को निर्मम प्रसन्नता पशु की कातर वाणी।
मिलकर वातावरण बना था कोई कुत्सित प्राणी ॥

–कामायनी

यहाँ यज्ञवेदी आलंबन है। श्रद्धा आश्रय है। खून के छींटे, हड्डियाँ, पशु का चीत्कार उद्दीपन है। नाक-भौं सिंकोड़ना, नेत्र बंद करना आदि अनुभाव हैं। ग्लानि, आवेग आदि संचारी भाव हैं। इनसे जुगुप्सा स्थायी भाव पुष्ट होकर वीभत्स रस का रूप प्राप्त करता है।

2. सिर पै बैठ्यो काम आँख दोउ खात निकारत।
खींचत जीभहिं स्यार अतिहि आनंद उर धारत ॥
गिद्ध-जाँघ कहँ खोदि के मांस उचारत।
स्वान आंगुरिन काहि काहि कै खात बिदारत ॥

–भारतेंदु हरिश्चंद्र

यहाँ श्मशान के घृणित दृश्य का चित्रण होने से वीभत्स रस है। श्मशान के दृश्य को देखने वाले राजा हरिश्चंद्र आश्रय हैं। श्मशान विषय है। श्मशान में कौए, सियार, गिद्ध आदि पशु-पक्षियों की घृणित चेष्टाएँ उद्दीपन हैं। इनके द्वारा हम उबकाई आना, वमन होना आदि अनुभावों की कल्पना कर सकते हैं। आवेग, उग्रता आदि संचारी भाव यहाँ प्रकट हुए हैं और इस प्रकार यहाँ वीभत्स रस की व्यंजना हुई है।

जुगुत्सा स्थायी भाव है।

8. अद्भुत रस–चकित कर देने वाले दृश्यों या प्रसंगों के चित्रण से अद्भुत रस उत्पन्न होता है। इसका स्थायी भाव विस्मय या आश्चर्य है। चकित कर देने वाले व्यक्ति या दृश्य इसमें आलंबन और उनकी चेष्टाएँ अथवा वर्णन उद्दीपन होते हैं। आँखें फैलाना, चीत्कार करना आदि अनुभाव और उत्सुकता, स्मृति, हर्ष आदि संचारी भाव इसके साथ रहते हैं।

उदाहरणः हरि ने भीषण हुंकार किया
अपना स्वरूप विस्तार किया।
डगमग डगमग दिग्गज डोले
भगवान कुपित होकर बोले
जंजीर बढ़ा कर साध मुझे
हाँ हाँ दुर्योधन। बाँध मुझे
यह देख गगन मुझमें लय है
यह देख पवन मुझमें लय है
मुझमें विलीन झंकार सकल
मुझमें लय है संसार सकल

दुर्योधन शांतिदूत बनकर आए श्रीकृष्ण को बाँधना चाहता है, तब श्रीकृष्ण अपना विराट रूप प्रकट कर देते हैं। श्रीकृष्ण के विराट रूप का विस्मयजनक वर्णन होने से यहाँ अद्भुत रस है। दुर्योधन की सभा के सदस्य आश्रय हैं और श्रीकृष्ण का विराट रूप विषय। कृष्ण का भीषण हुंकार करना, दिग्गजों का डोलना तथा उनके चुनौती भरे कथन उद्दीपन हैं। देखने वाले दृश्यों का आश्चर्य से फैलना, उनके देह का रोमांचित होना आदि अनुभाव यहाँ कल्पित किए जा सकते हैं। उत्सुकता, आवेग, हर्ष, अमर्ष आदि संचारी भाव हैं।

9. शांत रस–मन में संयम, शांति या वैराग्य को जाग्रत करने वाले प्रसंगों के चित्रण में शांत रस होता है। शांत रस का स्थायी भाव निर्वेद

या वैराग्य है। परमात्म-चिंतन या तत्व-ज्ञान उसका आलंबन और शांत स्थान, आश्रम, तीर्थ आदि का दर्शन उद्दीपन होता है। रोमांच होना, मुसकान आदि अनुभाव तथा हर्ष, स्मृति, धैर्य आदि संचारी भाव होते हैं।

उदाहरणः ममतामूर्ति अहिंसा प्रतिमा
स्थविर शांत थे, शांत पवन था
चंचल कहीं नहीं था कुछ भी
शांत शब्द था शांत गगन था
भिक्षु मंडली शांत, शांत राजा का दल था
शांत त्वरित गति बहने वाला निर्झर जल था
क्लांतिहीन वाणी अशोक की
मैं विमूढ़ हूँ, मुग्ध प्राण हूँ, दिशा चाहिए।

ये पंक्तियाँ भवानीप्रसाद मिश्र के **कालजयी** नामक काव्य की हैं। यहाँ सम्राट अशोक के मन में युद्ध में हुई हिंसा को देखकर वैराग्य उत्पन्न हो गया है। वे शांति प्राप्त करने के लिए स्थविर बौद्ध भिक्षु, के पास पहुँचते हैं। यह पूरा प्रसंग चित्त में संयम, शांति या वैराग्य के भाव जाग्रत करता है, इसलिए यहाँ शांत रस है। सम्राट अशोक आश्रय हैं, बौद्ध भिक्षु विषय हैं। आश्रय का शांत वातावरण और बौद्ध भिक्षु के प्रभाव उद्दीपन हैं। अशोक की शांति के लिए पुकार अनुभाव है। स्मृति, धृति, मति आदि संचारी भाव हैं, इनसे निर्वेद या वैराग्य नामक स्थायी भाव शांत रस में परिणत हुआ है।

10. वत्सल रस–अपने से छोटे के लिए स्नेह का चित्रण होने पर वत्सल रस होता है। इस रस का स्थायी भाव वात्सल्य है। पुत्र, शिष्य, शिशु आदि स्नेहपात्र इसके आलंबन विभाव तथा उनकी चेष्टाएँ उद्दीपन होती हैं। बच्चे को गोद में उठाना, दुलारना आदि अनुभाव और हर्ष, शंका, आवेग, स्मृति आदि संचारी भाव होते हैं।

उदाहरणः जगदंबा ने बाहर आकर
कहा–नहा धो ले बेटा

खा पी लो थक कर आए घर
जाने के दिन में लौटे हो
दुबला तन ले मुरझाया मुख
खटते औरों के हित नित
कब समझोगे अपना सुख दुख

सुमित्रानंदन पंत के **लोकायतन** महाकाव्य की इन पंक्तियों में माँ का एक बेटे के प्रति वात्सल्य चित्रित है। जगदंबा आश्रय है, बेटा विषय। जगदंबा का स्नेहपूर्ण कथन अनुभाव है। हर्ष, चिंता, आवेग आदि संचारी भाव हैं।

रसों की परस्पर अनुकूलता और प्रतिकूलता

किसी भी कृति में एक साथ कई रस हो सकते हैं। इनमें से एक मुख्य रस होता है, दूसरे रस गौण होते हैं। परंतु जो रस परस्पर अनुकूल हो, उन्हीं को एक साथ रचना में लाना चाहिए। प्रतिकूल रसों को एक साथ ले आने से रचना में रस दोष उत्पन्न होता है। शृंगार और वत्सल रस भी परस्पर अनुकूल हैं। वत्सल और हास्य रस भी एक साथ रह सकते हैं। वीर रस के साथ अद्भुत और रौद्र रस अनुकूल रहते हैं तो अद्भुत और रौद्र रसों के साथ वीर, शृंगार और अद्भुत भी परस्पर अनुकूल हैं। परंतु, शृंगार के साथ करुण, वीभत्स, रौद्र, भयानक—इन रसों का विरोध है, इन रसों के साथ शृंगार रस या शृंगार रस के साथ एक ही रचना में एक प्रसंग में ये रस साथ-साथ नहीं होने चाहिए। रौद्र रस का हास्य और भयानक रसों से विरोध है। ये तीनों रस भी एक साथ नहीं होने चाहिए। रसों की अनुकूलता और प्रतिकूलता को रस चार्ट के माध्यम से समझा जा सकता है।

रस	अनुकूल	प्रतिकूल
शृंगार	वीर, हास्य, अद्भुत तथा वत्सल	वीभत्स, शांत, रौद्र और भयानक

वीर	अद्भुत तथा रौद्र	शांत, करुण, भयानक
हास्य	वत्सल	वीभत्स, शांत, करुण रौद्र, भयानक

रस और पुरुषार्थ का संबंध

भारतीय परंपरा में मानव जीवन के चार पुरुषार्थ माने गए हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। काव्यशास्त्र के आचार्यों ने रस का अनिवार्य संबंध पुरुषार्थ से माना है। अर्थात् साहित्य में रस की अभिव्यक्ति होती है तो उससे किसी न किसी पुरुषार्थ की प्रेरणा सहृदय पाठक या नायक के दर्शक को अवश्य मिलनी चाहिए। शृंगार और हास्य से काम पुरुषार्थ की, वीर रस और रौद्र रस से धर्म पुरुषार्थ की, भयानक और वीभत्स रसों से अर्थ पुरुषार्थ की तथा शांत रस से मोक्ष पुरुषार्थ की सिद्धि होती है।

अध्याय–2

गुण-दोष विवेचन

काव्य के गुण

जिस प्रकार मनुष्य या किसी भी पदार्थ में गुण तथा दोष होते हैं, उसी प्रकार काव्य में भी गुण तथा दोष संभव हैं। शिष्टता, उदारता और सरलता जैसे गुणों से मनुष्य का व्यक्तित्व सुंदर, भव्य और आकर्षक बनता है, उसी प्रकार काव्य के गुणों से काव्य उदात्त, सुंदर और आकर्षक बनता है। मनुष्य के गुण उसके व्यक्तित्व या अंतःकरण में विद्‌यमान रहते हैं, उन्हें उस व्यक्तित्व या अंतःकरण से अलग करके हम नहीं देख सकते। इसी तरह काव्य के गुण भी उसके आंतरिक अंग होते हैं, जो काव्य के सौंदर्य को बढ़ाते हैं। काव्य की आत्मा रस मानी गई है और गुण रस के धर्म माने जाते हैं, इसलिए रसों का गुण से अनिवार्य संबंध है।

गुणों के प्रकार–गुण तीन हैं–माधुर्य, ओज और प्रसाद।

माधुर्य गुण–माधुर्य का अर्थ है मधुरता या मिठास। काव्य में माधुर्य वर्णों, शब्दों अथवा अर्थ की मधुरता से आता है। जब कोमल वर्णों या अक्षरों का प्रयोग हो, शब्द भी सुरुचिपूर्ण तथा मधुर हों और उनसे प्रकट किया गया अर्थ भी भावपूर्ण हो तो कविता में माधुर्य गुण आता है। श्रृंगार, करुणा और शांत रसों में माधुर्य गुण माना जाता है। माधुर्य गुण

के कारण काव्य पढ़ने या सुनने में हमें अच्छा लगता है। उसका अर्थ हमारे मन को द्रवित कर देता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि काव्य का वह गुण जो चित्त को द्रवित और आनंदविभोर कर दे, माधुर्य है।

उदाहरणः निरख सखी ये खंजन आए
फेरे उन मेरे रंजन ने इधर मन भाए।
—मैथिलीशरण गुप्त

यह उक्ति वियोग शृंगार के प्रसंग की है। यहाँ वियोगिनी उर्मिला कह रही है कि खंजन पक्षियों का आना ऐसा लग रहा है जैसे मेरे प्रियतम लक्ष्मण ने मेरी ओर देखा हो। यह अर्थ भी मधुर है, शब्द भी सुरुचिपूर्ण और सुंदर हैं तथा उनके अनुरूप यहाँ कोमल वर्णों का प्रयोग किया गया है।

ओज गुण—ओज गुण के कारण काव्य में ओजस्विता आती है। ऐसी कविता जिसको पढ़कर चित्त स्फूर्त हो जाए या फड़क उठे, ओज गुण से युक्त होती है। ओज गुण में ट, ठ, प, फ आदि कठोर वर्णों या कठोर अक्षरों का प्रयोग होता है। बड़े-बड़े शब्द या समासों का प्रयोग भी कवि ओज गुण लाने के लिए करते हैं। ओज गुण वीर, वीभत्स और रौद्र रसों में होता है। संक्षेप में कह सकते हैं कि काव्य का वह गुण जो चित्त में तेज और स्फूर्ति का संचार करता है, ओज गुण है।

उदाहरणः साजि चतुरंग सेन अंग में उमंग धरि,
सरजा सिवाजी जंग जीतन चलत है।
भूषण भनत नाद-बिहद नगारन के,
नदी नद मद गैबरन के रलत है।
ऐल फैल खैल-भैल खलक में गैल गैल,
गजन की ठैल पैल सैल उसलत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
थारा पर पारा पारावार यों हलत है।

भूषण के इस छंद में युद्ध के लिए शिवाजी के प्रस्थान का वर्णन

है। इसको पढ़ते हुए हम उत्साह से फड़क उठते हैं, अतएव यहाँ ओज गुण है। इसी प्रकार प्रसाद की इन पंक्तियों में भी ओज गुण है–

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्वला स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

प्रसाद गुण–प्रसाद का अर्थ है निर्मलता या स्वच्छता। कविता का अर्थ इतना निर्मल हो कि वह पढ़ते ही चित्त में उतर जाए तो ऐसी कविता में प्रसाद गुण होता है। प्रसाद गुण ऐसा गुण है जो सभी रसों में, सभी प्रसंगों में तथा प्रायः सभी प्रकार की रचनाओं में आवश्यक माना गया है। प्रसाद गुण का लक्षण इस प्रकार किया जा सकता है–**प्रसाद गुण काव्य का वह गुण है जो काव्य को पढ़ते या सुनते ही उसके अर्थ को हृदयंगम बना देता है।**

माखन लाल चतुर्वेदी की कविता **फूल की चाह** हरिवंश राय बच्चन की मधुशाला, मैथिलीशरण गुप्त की पंचवटी आदि कविताओं से इसके उदाहरण दिए जा सकते हैं।

काव्य के दोष–जिस तरह मनुष्य के व्यक्तित्व का उसके गुणों के कारण उत्कर्ष होता है, उसी प्रकार उसके दोषों के कारण व्यक्तित्व का अपकर्ष होता है। काव्य में भी इसी प्रकार दोष हो सकते हैं। दोषों के कारण काव्य के रसास्वाद में बाधा पैदा होती है, उसका सौन्दर्य कम हो जाता है तथा अर्थ को समझने में भी कठिनाई हो सकती है।

दोष का लक्षण इस प्रकार है–**जिसके कारण काव्य के रसास्वाद में व्यवधान हो अथवा अर्थबोध में बाधा हो वह दोष है।**

दोष के प्रकार–मुख्य रूप से दोष तीन प्रकार के माने जाते हैं–शब्द दोष, अर्थ दोष और रस दोष। दोषों में से कुछ नित्य दोष होते हैं, कुछ अनित्य। नित्य दोष सदैव दोष रहते हैं। अनित्य दोष काव्य में

विशेष प्रसंग या रस की दृष्टि से कहीं-कहीं दोष नहीं रहते। कहीं-कहीं वे गुण हो जाते हैं। मुख्य दोष इस प्रकार हैं–

श्रुतिकटुत्व–श्रुति का अर्थ है सुनना और कटुत्व का अर्थ है कड़वापन। जिस काव्य में शब्द सुनने पर कठोर और बुरे लगें उसमें श्रुतिकटुत्व दोष होता है। शृंगार, करुण, शांत जैसे रसों के प्रसंग में कठोर वर्णों या शब्दों का प्रयोग करने पर यह दोष होता है।

उदाहरणः कवि के कठिनतर कर्म की करते नहीं हम धृष्टता।
पर क्या न विषयोत्कृष्टता करती विचारोत्कृष्टता?॥

यहाँ धृष्टता, विषयोत्कृष्टता, विचारोत्कृष्टता आदि शब्दों में कठोर वर्ण होने से श्रुतिकटुत्व दोष आ गया है।

यह ध्यान रखना चाहिए कि श्रुतिकटुत्व सर्वत्र दोष नहीं होता। वीर रस, वीभत्स रस या रौद्र रस के काव्य में श्रुतिकटु उलटा गुण हो सकता है।

च्युत संस्कृति–व्याकरण के अनुसार शब्द का गलत प्रयोग करने पर च्युत संस्कृति दोष माना जाता है।

उदाहरणः मृदुल मधुर निद्रा चाहता चित्त मेरा
तब पिक करती तू शब्द प्रारंभ तेरा।

यहाँ पिक करती तू शब्द प्रारंभ अपना–यह कहना चाहिए न कि तेरा।

क्लिष्टत्व–क्लिष्टत्व का अर्थ है कठिनाई। अर्थ को दुरूह बनाने वाले शाब्दिक चमत्कारों के प्रयोग से यह दोष काव्य में आ जाता है।

उदाहरणः तरु-रिपु-रिपु-धर देख के विरहिन तिय अकुलाय।

यहाँ मेघ के लिए 'तरु-रिपु-रिपु-धर' शब्दों का प्रयोग किया गया है। जिसका तात्पर्य है वृक्ष का शत्रु अग्नि, अग्नि का शत्रु जल और उस जल को धारण करने वाला बादल। ऐसे प्रयोगों के कारण अर्थबोध में कठिनाई होती है।

संदिग्ध–जब काव्य में संदेह हो कि कवि किस अर्थ को बताना चाहता है, तो संदिग्ध दोष होता है।

उदाहरणः मार से बचाओ नाथ आई हूँ शरण में।

इन पंक्तियों में भक्त नारी ईश्वर से प्रार्थना कर रही है। यहाँ यह संदेह होता है कि वह मार (कामदेव) से रक्षा के लिए प्रार्थना कर रही है या मार (पिटाई) से बचाने के लिए। अतः संदिग्ध दोष है। यदि मार के स्थान पर काम शब्द रखा जाता तो यहाँ यह दोष न होता।

न्यूनपदत्व–कविता में जब अर्थ की स्पष्टता के लिए कोई शब्द जोड़ना आवश्यक लगे, जिसे कवि ने छोड़ दिया हो तो न्यूनपदत्व दोष होता है।

उदाहरणः यदि मुझे बाँधना चाहे मन,
पहले लो बाँध अनंत गगन।

यहाँ पर पहली पंक्ति में मन के पहले तुम्हारा शब्द जोड़ने पर ही अर्थ स्पष्ट हो पाता है।

अधिक पदत्व–यह न्यून पद के विपरीत है। अनावश्यक शब्दों के प्रयोग से अधिक पदत्व दोष होता है।

उदाहरणः तुम प्रगट करो उनको न अहो,
फिर है यह किसका दोष कहो।

यहाँ पहली पंक्ति में अहो शब्द केवल इसकी पंक्ति में कहो की तुक मिलाने के लिए कहा गया है, अर्थ की दृष्टि से यह अनावश्यक है। अतः अधिकपदत्व दोष है।

पुनरुक्त–(पुनः फिर से, उक्त = कहा गया) कही हुई बात का बिना प्रयोजन के दोहराने से पुनरुक्त दोष होता है।

उदाहरणः धन्य है कलंकहीन जीना एक क्षण का
युग-युग जीना सकलंक धिक्कार है।

यहाँ प्रथम पंक्ति को अर्थ के ही दूसरी पंक्ति में दोहराया गया है, अतः पुनरुक्त दोष है।

अश्लीलत्व–लज्जाजनक घृणास्पद या अमांगलिक कथन होने पर अश्लीलत्व दोष होता है।

उदाहरणः लिंगार्चन के हेतु जा रहा कौन वहाँ?

इस पंक्ति में लिंगार्चन का अर्थ भगवान शिव की पूजा है, पर इस शब्द से अन्य लज्जाजनक अर्थ का बोध होने से यहाँ अश्लीलत्व दोष है।

स्वशब्द वाच्य–स्वशब्द वाच्य का अर्थ है नाम से कहना। यह रस दोष है। जब रस, स्थायीभाव या संचारीभाव का नाम ले लिया जाए तो यह दोष होता है।

उदाहरणः रस सिंगार मंजनु किए कंजनु भंजनु दैन।
अंजन रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन।

यहाँ शृंगार रस का नाम होने से स्वशब्द वाच्य दोष है।

अध्याय–3

अलंकार विवेचन

अलंकार से तात्पर्य

अलंकार शब्द अलम् शब्द के साथ कृ (करना) धातु से बना है। अलम् के तीन अर्थ होते हैं—सजाना, रोकना तथा पर्याप्त होने का भाव। कविता या साहित्य की दृष्टि से भी अलंकार शब्द ये तीनों भाव प्रकट करता है। जिससे काव्य में सौन्दर्य उत्पन्न होता हो वह अलंकार है। यह अलंकार का पहला अर्थ है। वह सौन्दर्य इस प्रकार का हो कि कहना पड़े कि बस। इससे अधिक क्या कहा जाए—यह अलंकार का दूसरा अर्थ है। इसके साथ ही अलंकार से साहित्य में सम्पूर्णता आती है। यह अलंकार का तीसरा अर्थ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार कथन की रोचक, सुंदर और प्रभावपूर्ण प्रणाली अलंकार है। गुण और अलंकार में यह अंतर है कि गुण सीधे रस का उत्कर्ष करते हैं, अलंकार सीधे रस का उत्कर्ष नहीं करते।

अलंकार के भेद

काव्य या साहित्य में अलंकार के दो भेद होते हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्द के सौंदर्य की वृद्धि करने वाले और उसे संपूर्ण बनाने वाले तत्व शब्दालंकार हैं और अर्थ के सौन्दर्य का उत्कर्ष करने वाले तथा अर्थ को परिपूर्णता देने वाले तत्व अर्थालंकार हैं।

शब्दालंकार–शब्दालंकार के मुख्य चार भेद हैं–अनुप्रास, यमक, श्लेष, तथा पुनरुक्त्वाभास।

अनुप्रास–समान व्यंजनों की आवृत्ति (दोहराने) से अनुप्रास अलंकार होता है। इस आवृत्ति या दोहराने से काव्य में लालित्य और लय उत्पन्न होती है। इस आवृत्ति का अलग से अपने आप में कोई अर्थ नहीं होता। इसमें एक ही वर्ण को एक-एक बार दोहराया जाता है।

उदाहरणः पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से
मानो झीम रहे हैं तरु भी
मंद पवन के झोंकों से।

मैथिलीशरण गुप्त के **पंचवटी** काव्य की इन पंक्तियों में पहली पंक्ति में 'प' और 'र' की एक एक बार आवृत्ति हुई है। दूसरी पंक्ति में 'त' की एक बार आवृत्ति है। इसी प्रकार तीसरी पंक्ति में 'र' की एक बार आवृत्ति है। इस प्रकार यह पद्यांश अनेक वर्णों की एक एक बार आवृत्ति का उदाहरण है।

तरनि तनुजा तट तमाल तरुवर बहु छाए।

कवि भारतेंदु की इस पंक्ति में 'त' वर्ण को बार-बार दोहराया गया है। अतः यहाँ अनुप्रास अलंकार है। यह एक ही वर्ण की अनेक बार आवृत्ति का उदाहरण है। इसी प्रकार पंत की ये पंक्तियाँ भी द्रष्टय हैं–

उदाहरणः मृदु मंद-मंद मंथर-मंथर, लघुरजि हंसिनी-सी सुंदर,
तिर रही खोल चालों के पर।

पहली पंक्ति में 'न्द' और 'न्थ' की आवृत्ति हुई है। दूसरी पंक्ति में 'स' और 'र' की दो-दो बार आवृत्ति हुई है। इसी पंक्ति में 'ल' की एक बार आवृत्ति हुई है। इन आवृत्तियों के कारण कविता में लालित्य और लय आ गए हैं इसलिए यहाँ अनुप्रास अलंकार है।

यमक–एक ही शब्द को दो या दो से अधिक बार दोहराया जाए और इस आवृत्ति के अर्थ अलग-अलग हों तो यमक अलंकार होता है।

यमक के प्रयोग से कविता में चमत्कार और सुंदरता आ जाती है।

उदाहरणः कनक कनक तें सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाए बौराय जग, या पाए बौराय ॥

इस दोहे में 'कनक' शब्द का दो बार प्रयोग हुआ है। पहले कनक का अर्थ है धतूरा और दूसरे कनक का अर्थ है स्वर्ण या सोना। धतूरा खाने से मद होता है जबकि सोने को पाने मात्र से। कवि सोने और धतूरे की तुलना कर रहा है, दोनों के लिए एक ही शब्द का प्रयोग होने से यहाँ यमक अलंकार है।

तरणि के ही संग तरल तरंग में
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।

यहाँ 'तरणि' शब्द में यमक है। पहली पंक्ति में जो 'तरणि' शब्द आया है उसका अर्थ है 'सूर्य'? दूसरी पंक्ति में जो 'तरणि' शब्द है, उसका अर्थ नाव है। कवि कहना चाहता है कि उधर सूर्य डूब रहा था और इधर हमारी नाव डूब रही थी। सूर्य और नाव दोनों डूब रहे हैं, इसलिए दोनों के लिए उसने 'तरणि' इस एक शब्द का प्रयोग करके कविता में चमत्कार उत्पन्न कर दिया है।

श्लेष–श्लेष का अर्थ होता है चिपका हुआ। अर्थात् एक शब्द के दो या दो से अधिक अर्थ निकलते हों तो श्लेष अलंकार होता है।

उदाहरण 1ः चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर।

बिहारी के इस दोहे में वृषभानुज (वृषभानु की पुत्री राधा) और हलधर या बलराम के बीर अर्थात् भाई (कृष्ण) इन दोनों शब्दों का अन्य अर्थ भी निकलता है। जिसमें कवि का विनोद झलकता है। वृषभानुज अर्थात् वृषभ (बैल) की अनुजा अर्थात् गाय और हलधर का अर्थ भी बैल ही है।

उदाहरण 2ः चरन धरत चिंता करत, फिर चितवत चहुँ ओर।
'सुबरन' को ढूँढ़त फिरत, कवि व्यभिचारी चोर ॥

उपर्युक्त दोहे की दूसरी पंक्ति में 'सुबरन' का प्रयोग किया गया है। जिसे कवि, व्यभिचारी और चोर—तीनों ढूँढ़ रहे हैं। कवि 'सुबरन' अर्थात् अच्छे शब्द, व्यभिचारी 'सुबरन' अर्थात् अच्छा रूप-रंग और चोर भी 'सुबरन' अर्थात् स्वर्ण ढूँढ़ रहा है। इस प्रकार इस शब्द 'सुबरन' में श्लेष अलंकार है। इसी प्रकार 'चरन' भी 'कविता की पंक्तियों' और 'पैर' द्विअर्थक प्रयोग हैं। यहाँ भी श्लेष है।

'मंगन को देखि वट देत बार-बार है।'

इस काव्य-पंक्ति में 'पेट' द्विअर्थक है। 'पट' के अर्थ हैं—

(*i*) वस्त्र और (*ii*) किवाड़। पहला अर्थ है—वह व्यक्ति किसी याचक को देखकर उसे बार-बार 'वस्त्र' देता है और दूसरा अर्थ है—वह व्यक्ति याचक को देखते ही दरवाजा बंद कर लेता है। अतएव यहाँ 'श्लेष' अलंकार है।

पुनरुक्तवदाभास—पुनरुक्तवदाभास का अर्थ है पुनरुक्त जैसा लगना। पुनरुक्त का अर्थ है—फिर कहा गया। किसी उक्ति या कथन को दो या दो से अधिक बार कहा जाए तो पुनरुक्त होता है। पुनरुक्त दोष माना जाता है क्योंकि इससे कविता में आकर्षण नहीं रह जाता। परंतु जब कवि किसी बात को इस तरह से कहे कि पुनरुक्ति जैसी लगे पर वास्तव में पुनरुक्ति न हो तो पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है।

उदाहरणः होते विकंपित भी नहीं क्या अचल भूधर भी यहाँ

इस पंक्ति में अचल का अर्थ भी पहाड़ किया जा सकता है और भूधर का अर्थ भी पहाड़ है। अतः पहाड़ के लिए दो शब्दों का प्रयोग होने से पुनरुक्ति प्रतीत होती है, पर अचल का अर्थ यहाँ अडिग लेना चाहिए। ऐसी स्थिति में वास्तव में पुनरुक्ति नहीं है, पुनरुक्ति का आभास होता है इसलिए पुनरुक्तवदाभास अलंगार है।

अर्थालंकार—अर्थालंकार कई प्रकार के होते हैं। कुछ अर्थालंकार सादृश्यमूलक होते हैं। सादृश्यमूलक अलंकारों में दो वस्तुओं में समानता बताई जाती है। कुछ अलंकार विरोधमूलक होते हैं। इनमें विरोध दिखाकर

कविता में चमत्कार उत्पन्न किया जाता है।

सादृश्यमूलक अलंकारों के चार तत्व होते हैं—

1. उपमेय— जिसकी समानता बतानी हो वह उपमेय है। इसको प्रस्तुत भी कहा जाता है।

2. उपमान— जिससे समानता बताई जाए वह उपमान है।

3. साधारण धर्म— उपमेय और उपमान में जो गुण समान हों, वे साधारण धर्म हैं।

4. वाचक शब्द—जिन शब्दों के द्वारा समानता दिखाई जाए वे वाचक शब्द हैं।

उपमा—उपमा सादृश्यमूलक अलंकारों में सबसे पहला है। जहाँ भिन्नता रहते हुए भी उपमेय की उपमान के साथ समानता का कथन हो, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

उदाहरणः महंगाई बढ़ रही निरंतर द्रुपदसुता के चीर सी।
बेकारी बढ़ रही चीरती अंतर्मन को तीर सी ॥

सोहनलाल द्विवेदी की इन पंक्तियों में दो उपमाएँ हैं। पहली उपमा में महंगाई उपमेय है और दूसरी उपमा में बेकारी उपमेय है। महंगाई के लिए द्रुपदसुता (द्रौपदी) के चीर (वस्त्र) तथा बेकारी के लिए तीर ये उपमान हैं। महंगाई और द्रौपदी का चीर ये दो-दो अलग-अलग वस्तुएँ हैं। इसी प्रकार बेकारी और तीर ये भी अलग-अलग वस्तुएँ हैं। अतः दोनों उपमाओं में दो अलग-अलग वस्तुओं में समानता का कथन हुआ है। पहली उपमा में बढ़ना साधारण धर्म है, दूसरी में चीरना। 'सी' यह वाचक शब्द दोनों उपमाओं में आया है।

रूपक—जहाँ उपमेय पर उपमान का आरोप करते हुए दोनों में अभेद बताया जाए वहाँ रूपक अलंकार होता है। उपमा की तरह रूपक में उपमेय तथा उपमान दोनों अलग-अलग कहे जाते हैं, पर कवि दोनों को अलग-अलग कहकर भी अभेद या एकसा बताता है।

उदाहरणः चेतना लहर न उठेगी

जीवन समुद्र थिर न होगा
संध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा।

जयशंकर प्रसाद के आँसू काव्य की इन पंक्तियों में विरह का वर्णन करते हुए विरही के जीवन (उपमेय) पर समुद्र (उपमान) का आरोप किया गया है। इस जीवन रूपी समुद्र में चेतना (उपमेय) लहर (उपमान) की तरह उठती गिरती रहती है। पहली पंक्ति में चेतना पर लहर का आरोप भी किया गया है। इस तरह यहाँ एक प्रधान रूपक (जीवन समुद्र) है और दूसरा रूपक (चेतना लहर) उसका अंग बनकर आया है।

उत्प्रेक्षा–उत्प्रेक्षा का अर्थ कल्पना या संभावना है। उपमेय में उपमान की कल्पना या संभावना प्रकट की जाए तो उत्प्रेक्षा अलंकार होता है। मानो, मानहुँ, जानहूँ, गोया, ऐसा लगता है, सचमुच ही, लगभग इत्यादि शब्दों के द्वारा उत्प्रेक्षा अलंकार में कवि कल्पना या संभावना को प्रकट करते हैं। अतः ये शब्द उत्प्रेक्षा की पहचान कहे जा सकते हैं।

उदाहरणः चमचमात-चंचल नयन, बिच घूँघट-पट झीन।
मानहूँ सुरसरिता विमल जल उछरत जुग मीन ॥

बिहारी के इस दोहे में घूँघट के झीने पट में चमचमाते चंचल नयनों के लिए कहा गया है कि मानो वे गंगा के निर्मल जल में उछलती दो मछलियाँ हैं। इस संभावना या कल्पना के कारण यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। नायिका के नयन यहाँ उपमेय और मछली उपमान है।

संदेह–जहाँ उपमेय में उपमान का संदेह प्रकट किया जाता है वहाँ संदेह अलंकार होता है।

उदाहरणः आई है वीरता तपोवन में क्या पुण्य कमाने को?
या संन्यास साधना में है दैहिक शक्ति जगाने को?

रामधारी सिंह 'दिनकर' के **रश्मिरथी** खंडकाव्य की इन पंक्तियों में परशुराम का वर्णन किया गया है। परशुराम के आश्रम में कर्ण के आने

का प्रसंग है। इन पंक्तियों में कर्ण उपमेय है और उसमें वीरता और संन्यास उपमान का वर्णन किया गया है, अतः संदेह अलंकार है।

भ्रांतिमान–जहाँ भ्रम के कारण उपमेय को उपमान मान लिया जाए वहाँ भ्रांतिमान अलंकार होता है।

उदाहरणः नाक का मोती अधर की कांति से
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रांति से
देखकर सहसा हुआ शुक मौन है
सोचता है अन्य यह शुक कौन है?

ये पंक्तियाँ मैथिलीशरण गुप्त के **साकेत** महाकाव्य की हैं। इनमें नायिका उर्मिला का वर्णन किया गया है। उर्मिला ने नाक में मोती पहन रखा है। इस मोती पर उसके ओठ की लाल आभा पड़ रही है जिससे मोती अनार का दाना नजर आता है। कोई तोता उसे अनार का दाना मानकर उसे चुगने को बढ़ता है, तभी उसे उर्मिला की नाक में दूसरे तोते का भ्रम हो जाता है।

संदेह, उत्प्रेक्षा और भ्रांतिमान में बहुत समानता है, परंतु अंतर भी है। संदेह में उपमेय और उपमान दोनों पर समान वर्णन रहता है, जैसे–यह सुंदरी का मुख है या चंद्रमा। उत्प्रेक्षा में दोनों में से एक (उपमान) पर वज़न चला जाता है, जैसे–मुझे तो लगता है कि यह चंद्रमा ही होगा। भ्रांतिमान में उपमान का ज्ञान रह ही नहीं जाता। संदेह और भ्रांतिमान दोनों अलंकारों में मुख्य अंतर यह है कि संदेह अलंकार में अनिश्चय की स्थिति रहती है जबकि भ्रांतिमान में निश्चय प्रकट किया जाता है। जैसे–हलके अँधेरे में पड़ी रस्सी को साँप समझ लेना भ्रांतिमान है, किंतु यह रस्सी है या साँप, इस अनिश्चय में रहना संदेह है।

अन्योक्ति–अन्योक्ति का अर्थ है अन्य की उक्ति। अन्य अर्थात् उपमान की उक्ति या कथन करके उपमेय का निरूपण किया जाए, तो अन्योक्ति अलंकार होता है।

उदाहरणः करि फुलैल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
ए गंधि मतिमंद तू, अतर दिखावत काहि ॥

कवि बिहारी के इस दोहे में अतर इत्र बेचने वाले से कहा गया है कि तुम उस गँवार व्यक्ति को इत्र क्यों दिखा रहे हो जो उसे पीने की वस्तु समझकर चख रहा है और मीठा कहकर उसकी प्रशंसा कर रहा है। यह वास्तव में किसी गुणी व्यक्ति के प्रति कवि की उक्ति है। कवि गुणी व्यक्ति से यह कहना चाह रहा है कि अपने गुण या कला का प्रदर्शन नासमझ व्यक्तियों के समक्ष नहीं करना चाहिए।

विरोधाभास–जहाँ विरोध न होने पर भी विरोध की प्रतीति हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है। विरोधाभास अलंकार में वास्तव में विरोध नहीं होता इसीलिए कवि वास्तव में क्या कहना चाहता है–यह विचार करने पर विरोध की प्रतीति समाप्त हो जाती है।

उदाहरणः तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन हे आस्थिशेष तुम अस्थिहीन।
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल हे चिर पुराण हे चिर नवीन ॥

सुमित्रानंदन पंत की इन पंक्तियों में गांधी का वर्णन किया गया है। किसी मनुष्य को मांसहीन, रक्तहीन और आस्थाहीन कहने से विरोध प्रतीत होता है। इसी प्रकार चिर पुराण और चिर नवीन कहना भी परस्पर विरुद्ध कथन का आभास देता है। अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

मानवीकरण–प्रकृति या जड़ पदार्थों में मनुष्य के गुणों का आरोप करके चेतन के समान उनकी चेष्टाओं का चित्रण किया जाए तो मानवीकरण अलंकार होता है।

उदाहरणः धीरे-धीरे उतर क्षितिज से
आ वसंत रजनी।
तारकमय नव बेणी बंधन,
शीश-फूल कर शीशे का नूतन,
रश्मि वलय सित धन अवगुंठन

मुक्ताहल अभिराम बिछा दे
चितवन से अपनी।
पुलकती आ वसंत रजनी।

यहाँ महादेवी वर्मा ने वसंत की रात्रि का चित्रण एक सचेतन नायिका के रूप में किया है जो शृंगार किए हुए धीरे-धीरे क्षितिज से उतर रही है। इस प्रकार यहाँ मानवीकरण अलंकार है।

विशेषण-विपर्यय–विपर्यय का अर्थ है–उलटफेर। जब किसी वाक्य में अर्थ की सुंदरता लाने के लिए विशेषण का स्थान उलट दिया जाए या बदल दिया जाए तो विशेषण विपर्यय अलंकार होता है। यह लक्षण पर आधारित अलंकार है।

उदाहरणः इस करुणा कलित हृदय में,
क्यों विकल रागिनि बजती?

–जयशंकर प्रसाद

इन पंक्तियों में रागिनी को विकल कहा गया है। विकल तो मनुष्य होता है, रागिनि नहीं। जो विशेषण मनुष्य के लिए होना चाहिए, वह रागिनि के लिए प्रयुक्त कर दिया गया है। अतः यहाँ विशेषण विपर्यय अलंकार है।

बिंब–हमारे शरीर में श्रोत्र (कान), त्वक् (चमड़ी), चक्षु (आँख), जीह्वा (जीभ) तथा नासिका–ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। इन ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से हम संसार के विभिन्न पदार्थों का अनुभव करते हैं। हम शब्दों को सुनकर, वस्तुओं को छूकर, देखकर, चखकर या सूँघकर अनुभव कर सकते हैं। जब कवि या साहित्यकार अपनी रचना में इन वस्तुओं के अनुभव को इस प्रकार मूर्त करता है कि वह हमें अपनी ज्ञानेंद्रियों के अनुभव के समान प्रतीत होने लगे तो यह बिंब कहलाता है। पाँचों ज्ञानेंद्रियों के अनुभवों के आधार पर बिंब के श्रव्य, स्पृश्य, दृश्य, स्वाद्य और घ्राण–ये पाँच प्रकार हैं। साहित्य में बिंब किसी भी मूर्त या अमूर्त पदार्थ का मानसिक चित्र है। इसे भावगर्भित शब्दचित्र भी

कहा गया है—

उदाहरणः बहुत दिनों के बाद
अब की मैंने जी भर देखी
पकी सुनहली फसलों की मुसकान
—बहुत दिनों के बाद

बहुत दिनों के बाद
अब की मैं जी भर सुन पाया
धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान
—बहुत दिनों के बाद

कवि नागार्जुन की इस कविता के पहले बंध में पकी सुनहली फसलों का दृश्य बिंब है। उसके पश्चात् 'धान कूटती किशोरियों की कोकिल कंठी तान' में श्रव्य बिंब है।

इसी प्रकार महादेवी वर्मा की निम्नलिखित कविता में अमूर्त पदार्थ उर (हृदय) में विद्यमान वियोग या व्यथा के भाव को दीपक के बिंब द्वारा व्यक्त किया गया है।

उदाहरणः उर का दीपक चिर स्नेह अतल
सुधि लौ शत झंझा से निश्चल
सुख से भीनी दुख से गीली
नन्ही सी साँस अशेष रही।

प्रतीक—प्रतीक का अर्थ होता है चिह्न। एक वस्तु की पहचान के लिए हम दूसरी वस्तु का प्रयोग करते हैं और यह दूसरी वस्तु पहली वस्तु को बताने के लिए सर्वस्वीकृत होती जाती है तो वह पहली वस्तु का प्रतीक बन जाती है। कमल सुंदरता का प्रतीक है, क्योंकि शताब्दियों से कवि जन सौन्दर्य के एक उपमान के रूप में इसका प्रयोग करते आए हैं।

साहित्य में प्रतीक किसी भाव या पदार्थ के लिए परंपरागत चिह्न होता है जो उस भाव या पदार्थ की प्रतीति कराने के लिए संप्रेषण का सर्वाधिक उचित माध्यम बन जाता है। प्रतीक के द्वारा अमूर्त पदार्थ मूर्त

हो सकते हैं तथा जटिल सत्य और तथ्य की प्रतीति सहज रूप में हो जाती है।

उदाहरणः घूम रहा है कैसा चक्र
वह नवनीत कहाँ जाता है
रह जाता है चक्र।

इस कविता में संसार को एक चक्र के रूप में दिखाया गया है। चक्र यहाँ संसार का प्रतीक है। इसी प्रकार–

यह मंदिर का दीप
इसे नीरव जलने दो।

महादेवी वर्मा की इस पंक्ति में दीप साधना का प्रतीक है। अज्ञेय की कविता नदी के द्वीप भी एक प्रतीकात्मक कविता है–

हम नदी के द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हम को छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गलियाँ, अंतरीप, उभार, सैकत-कूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।
माँ है वह। इसी से हम-बने हैं।

यहाँ व्यक्ति और समाज के परस्पर संबंधों को प्रतीकों के माध्यम से प्रकट किया गया है। द्वीप, नदी, भूखंड, धारा आदि प्रतीकों का प्रयोग कवि ने यहाँ किया है। द्वीप व्यक्ति का प्रतीक है और नदी परंपरा और समय के सतत प्रवाह का प्रतीक है। भूखंड समाज का प्रतीक है। नदी भूखंड और द्वीप को जोड़ती हुई लगातार बहती रहती है। परंपरा व्यक्ति और समाज को जोड़ती है।

अध्याय–4
छंद विवेचन

छंद का स्वरूप–मुख्य रूप से गद्य और पद्य इन दो विधाओं से साहित्य रचा जाता है। सामान्यतः पद्य की रचना छंद में होती है। यति, मति और लय से समन्वित पद्य का रूप छंद है।

छंद से तात्पर्य–छंद शब्द के मूलतः दो अर्थ होते हैं–आवरण या आच्छादन (ढकना) और प्रवाह। छंद के द्वारा रचना को इस प्रकार बाँध लिया जाता है कि वह बिखरने से बच जाती है। इसके साथ ही छंद के कारण ही रचना का पाठ करते समय हम लय या प्रवाह का अनुभव करते हैं।

छंद के घटक

यति-यति का अर्थ है रुकना। प्रत्येक छंद में कुछ स्थल निर्धारित रहते हैं, पढ़ते समय उन स्थलों पर पहुँचकर रुकना होता है। गद्य के वाक्यों को पढ़ते हुए हम वाक्य का अंश या पूरा वाक्य समाप्त होने पर, जहाँ अल्प विराम या पूर्ण विराम लगा होता है, वहाँ रुकते हैं। छंद में वाक्य गद्य की भाँति पूरा नहीं होता और छंद के पढ़ने में कहाँ ठहरना या रुकना है, इसकी पद्धति भी गद्य के पढ़ने से अलग होती है। छंद के प्रवाह या लय को बनाए रखने के लिए जहाँ रुकना आवश्यक हो वहाँ रुकना ही यति है। छंद का सही ढंग से पाठ करने के लिए प्रत्येक छंद की यतियों को समझना भी आवश्यक है। उदाहरण

के लिए–

भए प्रगट कृपाला, दीन दयाला, कौसल्या हितकारी...

इस पंक्ति में आठवें और तेरहवें अक्षरों के 'ला' पर रुकने से छंद में प्रवाह आता है। इसलिए यति इन अक्षरों के बाद है।

गति–गति यति का विलोम है। परंतु छंद में यति और गति एक साथ रहती हैं जहाँ यति न हो वहाँ बिना अटके या बिना रुके छंद का पाठ करने से गति निर्मित होती है। छंद में लय के साथ एक प्रवाह रहता है। यह प्रवाह ही गति है।

लय–गति और यति के समुचित प्रयोग या समन्वय से छंद में जो गुण उत्पन्न होता है वह लय है। लय के कारण ही किसी कविता का पाठ सुनने में मनोहारी लगता है। उदाहरण के लिए ऊपर उद्धृत चौपाई का चाहे पाठ किया जाए या गायन लय के कारण वह पाठ या गायन आकर्षक हो जाता है।

छंद के भेद–छंद के भेद मात्रा तथा वर्ण के आधार पर किए जाते हैं। मात्रा के आधार पर जो छंद बनते हैं उन्हें मात्रिक छंद कहा जाता है। वर्णों के आधार पर जो छंद बनते हैं उन्हें वर्णिक छंद कहा जाता है। वर्णिक छंदों में वर्णों का निश्चित क्रम रहता है और मात्रिक छंद में मात्राओं का।

मात्रा–किसी भी वर्ण के उच्चारण में लगने वाला समय मात्रा है। ह्रस्व वर्ण के उच्चारण में जो समय लगता है वह एक मात्रा है। दीर्घ वर्ण के उच्चारण में लगने वाला समय दो मात्रा का होता है। 'क' में एक मात्रा है, 'का' में दो मात्रा।

लघु और गुरु–छंद के संदर्भ में वर्णों को ह्रस्व और दीर्घ न कहकर लघु और गुरु कहते हैं। इस प्रकार लघु और गुरु के अनुसार मात्रा के दो प्रकार हो जाते हैं। लघु के लिए चिह्न (।) का तथा गुरु के लिए अवग्रह, जो अंग्रेजी S के समान होता है, उसके चिह्न का प्रयोग होता है।

लघु और गुरु तथा मात्राओं की गणना के नियम

लघु और गुरु तथा मात्रा की गिनती के संबंध में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1.अ, इ, उ, ऋ—ये स्वर लघु हैं तथा इनकी एक मात्रा होती है। मात्रा स्वरों की ही गिनी जाती है, व्यंजनों की नहीं।

2.आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ—ये स्वर गुरु हैं, तथा इनकी दो मात्राएँ मानी जाती हैं।

3.संयुक्ताक्षर के आरंभ में यदि कोई आधा वर्ण है तो उसकी मात्रा नहीं गिनी जाती। जैसे—व्यवधान या व्यवहार में 'व्य' की एक ही मात्रा मानी जाएगी।

4.यदि किसी शब्द के बीच में या अंत में संयुक्ताक्षर आया है तो संयुक्ताक्षर के पहले वाला वर्ण गुरु माना जाता है। जैसे—भक्त, रक्त आदि में संयुक्ताक्षर है—क्त। इसके पहले के वर्ण भ, र, गुरु माने जाएँगे। इस प्रकार भक्त, रक्त—इन दोनों शब्दों में इस क्रम से एक-एक गुरु और फिर एक-एक लघु है, अतएव इन दोनों शब्दों में तीन-तीन मात्राएँ हैं, न कि दो-दो।

5. अनुस्वार और विसर्ग के पहले यदि लघु वर्ण हो, तो उसे गुरु माना जाएगा। जैसे अंत, वसंत, अंग—इन शब्दों में अ, स और अ के बाद अनुस्वार आया है। इसलिए अनुस्वार के पहले के वर्ण यहाँ गुरु माने जाएँगे। अंत में पहले एक गुरु और फिर एक लघु है (ऽ।)। 'वसंत' में एक लघु, फिर एक गुरु और फिर एक लघु है (।ऽ।)। इसी प्रकार रंग, भंग आदि शब्दों में र और भ गुरु माने जाएँगे और इनकी दो मात्राएँ जोड़कर रंग या भंग शब्दों में तीन-तीन मात्राएँ मानी जाएँगी। इसी प्रकार दुःख में दुख के पश्चात् विसर्ग आया है, तो इस दु को गुरु माना जाएगा। अंतःकरण में त के पश्चात् विसर्ग है, अतः यह त गुरु माना जाएगा और इसकी दो मात्राएँ होंगी।

6. किसी लघु वर्ण के बाद अनुस्वार के स्थान पर यदि चंद्रबिंदु हो तो वह लघु वर्ण गुरु नहीं माना जाएगा। जैसे—'हंस' में ह के बाद अनुस्वार है, तो यह तो गुरु माना जाएगा पर हँसी में ह के बाद चंद्रबिंदु है, तो यह ह गुरु नहीं माना जाएगा।

7. हलंत के पहले का लघु वर्ण भी गुरु माना जाएगा। जैसे—श्रीमन् में हलंत न् के पहले म है, यह म गुरु होगा। न् में स्वर नहीं है, अतः न् की मात्रा नहीं गिनी जाएगी।

गण—तीन वर्णों का समूह गण कहा जाता है। छंदों में आठ प्रकार के गणों का प्रयोग किया जाता है। इन गणों को समझने के लिए एक सूत्र है—यमाता राज भान सलगम्। इस सूत्र को याद रखने से गणों के नाम तथा उनमें लघु गुरु वर्ण किस क्रम से रहते हैं, यह सरलता से समझा जा सकता है।

इस सूत्र में, यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण समण—इन आठ गणों के प्रथम अक्षर के अनुसार आठ वर्ण इसी क्रम से रखे गए हैं और जिस गण में वर्णों के लघु—गुरु का क्रम जानना हो, उसके प्रथम अक्षर के साथ आगे के दो अक्षर और मिलाकर क्रम माना जा सकता है। इस प्रकार आठों गणों में तीन-तीन वर्ण रहते हैं और इस सूत्र के अनुसार आठों गणों में लघु-गुरु तथा मात्राओं की संख्या इस प्रकार दिखाई जा सकती है—

	गण का नाम	उदाहरण	लघु गुरु का क्रम	मात्राएँ
1.	यगण	यमाता	I S S	5
2.	मगण	मातारा	S S S	6
3.	तगण	ताराण	S S I	5
4.	रगण	राजभा	S I S	5
5.	जगण	जभान	I S I	4
6.	भगण	भानस	S I I	4
7.	नगण	नसल	I I I	3
8.	सगण	सलगम्	I I S	4

छंद का विभाजन–प्रत्येक छंद में चार चरण होते हैं। इनको पाद या पद भी कहा जाता है। दूसरे और चौथे चरण को सम चरण कहते हैं, पहले और तीसरे को विषण चरम। छप्पन या कुंडलिया जैसे छंदों में छह चरण होते हैं। एक चरण को प्रायः एक पंक्ति में लिखा जाता है। दोहा, सोरठा जैसे छोटे छंदों में दो-दो चरण भी एक पंक्ति में लिखे जाते हैं।

अंत्यानुप्रास या तुक–किसी छंद के प्रत्येक चरण के अंत में एक सी ध्वनि होना अंत्यानुप्रास या तुक है। अनेक छंदों में अंत्यानुप्रास या तुक का निर्वाह होता है।

मात्रिक छंदः दोहा–दोहा अर्धसम मात्रिक छंद है। इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में 11-11 मात्राएँ होती हैं तथा विषम चरणों (पहले और तीसरे) में 13-13 मात्राएँ होती हैं। दोहे के विषय चरणों के प्रारंभ में जगण (।ऽ।) नहीं रहना चाहिए। सम चरणों के अंत में दो वर्णों में पहला गुरु (ऽ) फिर अंतिम वर्ण-लघु (।) होना चाहिए।

दोहे के सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में अंत्यानुप्रास या तुक रहती है, विषम चरणों (पहले और तीसरे) में नहीं।

उदाहरणः ।।।। ।। ऽ ऽ।ऽ =13 ऽ। ।।। ऽ ऽ। =11

रहिमन चुप ह्वै बैठिए देखि दिनन को फेर।

।।ऽऽ ।।ऽ।ऽ =13 ।।। । ।। ऽऽ। =11

जब नीके दिन आई हैं, बनत न लागि है बेर ॥

सोरठा–सोरठे को दोहे का उलटा कहा जा सकता है। इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में 13-13 मात्राएँ होती हैं तथा विषम चरणों (पहले और तीसरे) में 11-11 मात्राएँ होती हैं। दोहे के समान इसके पहले और दूसरे चरण की मात्राओं का योग 24 होता है। इसी प्रकार तीसरे और चौथे चरण की मात्राओं का योग भी 24 होता है। परंतु दोहे के विपरीत इसके सम चरणों (दूसरे और चौथे चरण) में अंत्यानुप्रास या तुक नहीं रहती, विषम (पहले और तीसरे) में तुक होती है।

उदाहरणः ।। ।। ऽ।। ऽ। = 11 ऽ। ।ऽ ।।।। = 15

लिख कर लोहित लेख, डूब गया दिनमणि अहा

S। S। ।। S। = 11 S।। ।।।। S ।S = 13

व्योम सिंधु सखि देख, तारक, बुदबुद दे रहा ॥

रोला—रोला एक सम मात्रिक छंद है। इस छंद के प्रत्येक चरण में 24-24 मात्राएँ होती हैं तथा प्रत्येक चरण में 11वीं और 13वीं मात्रा पर यति होती है।

उदाहरणः ।। S। ।।S। = 11 S। ॥S। ।S S = 13

किंतु मिला अपमान और व्यवहार बुरा था

।।S। S ॥S = 11 S॥ S। ।SS = 11

मनस्ताप से सबके भीतर रोष भरा था।

S। ॥।S ।।। = 11 ।SS SSSS = 13

क्षुब्ध निरखते बदन इड़ा का पीला पीला

।।। ।।। S ।S = 11 ।SS S॥ SS = 13

उधर प्रकृति की रुकी नहीं थी तांडव लीला ॥

चौपाई—चौपाई भी एक सममात्रिक छंद है। इसमें चार चरण होते हैं तथा प्रत्येक चरण में सोलह-सोलह मात्राएँ होती हैं। चौपाई के दो चरणों को अर्धाली कहा जाता है। इसमें अंत्यानुप्रास या तुक का निर्वाह किया जाता है। चौपाई के अंत में जगण (।S।) या तगण (SS।) नहीं होना चाहिए।

उदाहरणः S। S॥ S॥ ॥ ॥ = 16

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि

।।। ।।। ।।S। ।।। ।। = 16

कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥

S।।।।। S।S SS = 16

मानहु मदन दुंदुभी दीन्हीं।

।।S S। ।।। ।। SS = 16

मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्हीं ॥

हरिगीतिका–हरिगीतिका के प्रत्येक चरण में 28-28 मात्राएँ होती हैं तथा प्रत्येक चरण में 16वीं और 12वीं मात्रा पर यति होती है। प्रत्येक चरण के अंत के दो वर्णों में उपांत्य (अंत से पहले वाला) वर्ण लघु और अंतिम वर्ण गुरु होता है।

उदाहरणः ।। ऽ। ऽऽऽ ॥ ॥ ॥ ।ऽ ऽऽऽ। = 16
+ 12 = 28

खग वृंद सोता है अतः कल कल नहीं होता वहाँ
॥ ऽ। ऽ॥ ऽ ॥। ऽ ऽ। ऽ ऽऽ ।ऽ = 28
बस मंद मारुत का गमन ही मौन है खोता जहाँ।
॥ ॥। ऽऽऽ ॥ऽ ।॥ ॥।ऽ ऽ ।ऽ = 28
इस तरह धीरे से परस्पर कह सजगता की कथा।
ऽऽ।ऽऽ ऽ। ऽ ऽ ऽ ऽऽ ।ऽ ।ऽऽ = 28
यों दीखते हैं वृक्ष ज्यों हो, विश्व के प्रहरी यथा ॥

वार्णिक छंद–कवित्त के प्रत्येक चरण में 31 – 31 वर्ण होते हैं। प्रत्येक चरण के 16वें और फिर 15वें वर्ण पर यति रहती है। प्रत्येक चरण का अंतिम वर्ण गुरु होता है।

उदाहरणः भुज-भुजगेस की बै संगनि भुजंगिनि-सी,
खोदि खोदि खाती दीह दारुन दलन के।
बखतर पाखरन बीच धासि जाति मीन,
पैरी पार जात परवाह ज्यों जलन के ॥
रैया राव चँपति के छत्रसाल महाराज
भूषन सकें करि बखान को बलन के।
पच्छी परछीने ऐसे परे पर छीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन के ॥

सवैया–सवैया छंद के कई भेद हैं। ये भेद गणों के संयोजन के आधार पर बनते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध मत्तगयंद सवैया है। इसे मालती सवैया भी कहते हैं। इसके प्रत्येक चरण में सात भगण और अंत

में दो गुरु वर्ण होते हैं। इस प्रकार इस सवैया के प्रत्येक चरण में 23-23 वर्ण होते हैं।

उदाहरणः सेस महेस गनेस सुरेस दिनेसहु जाहि निरंतर गावैं।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुवेद बतावैं।
नारद से सुक व्यास रटैं पचि हारि रहे पुनि पारन पावैं।
ताहि अहीर कि छोहरियाँ छछिया भरि छाछ प नाच नचावैं।

अंतिम चरण में हम देखते हैं कि 'अहीर कि' के स्थान पर 'अहीर की' रख दिया जाए तो छंद टूटेगा, क्योंकि भगण नहीं बनेगा। इसी प्रकार 'छाह प' के स्थान पर 'छाछ पे' करने पर भी छंद टूटता है।

मुक्त छंद–जब किसी एक छंद के अनुशासन का पालन न किया जाए और कविता में भीतर ही भीतर चलने वाली लय को बनाए रखते हुए रचना की जाए तो ऐसी रचना मुक्त छंद की रचना होती है। मुक्त छंद का आशय छंद का त्याग नहीं है, इसलिए छंद मुक्त कविता न कहकर मुक्त छंद की कविता कहा जाता है। अर्थात् इसमें कवि अपने आशय और अभिव्यक्ति के अनुरूप अपना छंद स्वयं रच लेता है। किसी एक पूर्व-निर्धारित छंद के नियम को वह नहीं अपनाता। निराला की जूही की कली मुक्त छंद का सुंदर उदाहरण है।





बाणी प्रकाशन

ISBN : 978-93-5000-896-6



www.vaniprakashan.in
Grammar